द्वितीय अध्याय

पत्रकारिता : हंस और साहित्य

द्वितीय अध्याय : पत्रकारिता : हंस और साहित्य

- हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता
- हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता का स्वरूप और हिंदी पत्रों का आरंभ
- प्रेमचंद का प्रत्रकार रूप
- हंस
- हंस की विशेषताएं
- हंस और प्रेमचंद
- हंस और शिवरानी देवी
- हंस और बाबूराव विष्णु पराड़कर
- हंस और जैनेन्द्र कुमार
- हंस और श्रीपतराय
- हंस और शिवदान सिंह चौहान
- हंस और अमृतराय
- निष्कर्ष

द्वितीय अध्याय : पत्रकारिता : हंस और साहित्य

हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता :

साहित्यिक पत्रकारिता का पत्रकारिता के इतिहास में विशिष्ट स्थान रहा है। साहित्यिक पत्रकारिता एक ऐसा माध्यम है जिसके जरिये साहित्य की विभिन्न विधाओं को विशेष प्रयोजन के साथ अभिव्यक्ति दी जाती है। ये विधाएं आलोचना, काव्य, कथा-साहित्य, नाट्य, निबंध, संस्मरण, साक्षात्कार, समीक्षा, समकालीन साहित्य विमर्श, तुलनात्मक साहित्य, साहित्य-संस्कृति आदि पर केन्द्रित होती हैं। इन विधाओं में पत्र-पत्रिकाओं (मासिक, त्रैमासिक, वार्षिक, अर्धवार्षिक) के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। जाहिर है इस प्रस्तुति-कला के संयोजन व संपादन के लिए पत्रकारिता के माध्यम का सहारा लेना पड़ता है और इस प्रक्रिया के साथ ही साहित्यिक पत्रकारिता की शुरुआत समझी जा सकती है।

साहित्य में आधुनिक चेतना, स्वच्छंद आत्माभिव्यक्ति और व्यक्तिगत पाठक समुदाय के विकास के साथ ही साहित्यिक पत्रकारिता का उदय हुआ था। हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता हिंदी साहित्य के विकास का अभिन्न अंग है। समाचार पत्र या पत्रिकाएं जहाँ सूचना पर बल देते हैं, वहीं साहित्यिक पत्रकारिता का उद्देश्य सांस्कृतिक चेतना और परिवेश में पाठक को विशिष्ट ज्ञान प्रशिष्ट कराते हैं। वस्तुतः हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता हमारे आधुनिक साहित्यिक इतिहास का अत्यंत गौरवशाली स्वर्णिम पृष्ठ है। स्मरणीय है कि हिंदी के गद्य साहित्य और नवीन एवं मौलिक गद्य-विधाओं का उदय ही हिंदी पत्रकारिता की सर्जनात्मक कोख से हुआ था। यह पत्रकारिता की आरम्भ कालीन हिंदी-समाचार पत्रों के पृष्ठों पर धीरे-धीरे उभरने वाली अर्ध साहित्यिक पत्रकारिता से क्रमशः विकसित होते हुए, भारतेंदु युग में साहित्यिक पत्रकारिता के रूप में प्रस्फुटित हुई थी।

साहित्यिक पत्रकारिता का उद्देश्य साहित्य के जरिए मनुष्य और समाज को तथा स्वयं साहित्य और साहित्यिक गतिविधि को बेहतर बनाना होता है। "केवल साहित्य सृजन से

यह उद्देश्य पूरा नहीं होता, इसलिए साहित्यकारों को साहित्यिक पत्रिकाएं निकालने की जरूरत पड़ती है। भारतेंदु हरिश्चंद्र हों या प्रेमचंद, पन्त हों या निराला, यशपाल हों या अज्ञेय, धर्मवीर भारती हों या भैरव प्रसाद गुप्त, नामवर सिंह हों या रामविलास शर्मा, कमलेश्वर हों या राजेंद्र यादव, आधुनिक हिंदी साहित्य के प्रत्येक काल में अनेक साहित्यकार साहित्यिक पत्रिकाएं निकालते रहे हैं और आज भी निकाल रहे हैं।"1

साहित्यिक पत्रकारिता व्यवसाय प्रधान दृष्टिकोण से युक्त पत्रकारी से भिन्न होती है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से हिंदी पत्रकारिता का उद्भव उन्नीसवीं शताब्दी में हुआ था। हिंदी के सर्वप्रथम पत्रकार युगल किशोर शुक्ल ने जब कलकत्ता से 'उदन्त मार्तंड' शीर्षक पत्र का प्रकाशन किया, तो उसकी पृष्ठभूमि में व्यावसायिकता का उद्देश्य नहीं था, परन्तु दुर्भाग्यवश आर्थिक संकट के कारण और ग्राहकों की कमी को दृष्टि में रखते हुए इसका प्रकाशन उन्हें स्थगित करना पड़ा। यह हिंदी साहित्यिक पत्रकारिता के लिए एक बड़ी चुनौती थी।

भारतेंदु हरिश्चंद्र (सन् 1850-1885 ई.) की पत्रिकाओं कविवचन सुधा (1867 ई.), हरिश्चंद्र मैगज़ीन (1873 ई.) और हरिश्चंद्र चन्द्रिका (1874 ई.) से ही वास्तविक अर्थों में हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता के दर्शन होते हैं। "भारतेन्दु द्वारा सम्पादित 'कवि वचनसुधा', बालकृष्ण भट्ट द्वारा सम्पादित 'हिंदी प्रदीप', प्रताप नारायण मिश्र द्वारा सम्पादित 'ब्राह्मण', महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा सम्पादित 'सरस्वती', प्रेमचंद द्वारा सम्पादित 'हंस', सूर्यकांत त्रिपाठी निराला द्वारा सम्पादित 'मतवाला', रूपनारायण पाण्डेय द्वारा सम्पादित 'माधुरी', आदि साहित्यिक पत्रकारिता की उपलब्धियां हैं।"2 हिंदी की आरम्भकालीन साहित्यिक पत्रकारिता से ही हिंदी गद्य का चलता हुआ रूप निखर कर सामने आया और भारतेंदु-युग से गद्य-विधाओं और गद्य-साहित्य की अखण्ड परंपरा का अविर्भाव हुआ।

हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता का स्वरूप और हिंदी पत्रों का आरंभ :

देवनागरी लिपि में छपाई के काम की शुरुआत कलकत्ता से हुई थी और वही से आरंभकालीन हिंदी का साहित्य भी प्रचुर मात्रा में लिखा गया था तथा 1827 तक पूरे उत्तर भारत में हिंदी का स्वरूप उभर कर सामने आ गया था। 30 मई 1826 को पहला हिंदी समाचार पत्र साप्ताहिक 'उदंत मर्त्ताण्ड' उदित हुआ। जिसके प्रकाशन की अभिलाषा संपादक पं. जुगल किशोर शुक्ल को अर्से से रही। कई भाषाओँ के अखबार पहले से ही छपते थे एक हिंदी भाषा ही थी जिसके सर्वाधिक पाठक होने के बावजूद हिंदी का कोई अपना अखबार नहीं था। हिंदी भाषी समाज को देश के वर्तमान और ताजे सन्दर्भों, आधुनिक ज्ञान, विज्ञान व सूचनाओं से जोड़ने जैसी महत्वाकांक्षा की बलवती प्रेरणा का ही परिणाम था कि पं. जुगल किशोर शुक्ल द्वारा हिंदी के प्रथम समाचार-पत्र 'उदन्त मार्तंड' का 30 मई 1926 को प्रकाशन आरंभ हुआ।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल भी 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में लिखते हैं कि "पं. जुगुलकिशोर ने जो कानपुर के रहने वाले थे, संवत् 1883 में 'उदंत मार्तंड' नाम का एक संवादपत्र निकाला जिसे हिंदी का पहला समाचरपत्र समझना चाहिए।"3 'उदंत मर्त्ताण्ड' के बाद "काशी से पत्र 'सुधाकर' बाबू तारामोहन मित्र आदि कई सज्जनों के सहयोग से संवत् 1907 ई. में निकला।"4 और लगभग इसी समय "आगरा से मुंशी सदासुखलाल के प्रबंध और संपादन में 'बुद्धिप्रकाश' निकला जो कई वर्ष तक चलता रहा।"5 आदि के प्रयासों से, "अदालती भाषा उर्दू बनाई जाने पर भी विक्रम की 20वीं शताब्दी के आरंभ के पहले से ही हिंदी खड़ी बोली गद्य की परंपरा हिंदी साहित्य में अच्छी तरह चल पड़ी, उसमें पुस्तकें छपने लगीं, अखबार निकलने लगे।"6 कहना न होगा कि इन अखबारों के अर्ध-साहित्यिक रूप से ही क्रमशः साहित्यिक पत्रकारिता का विकास हुआ।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय हैं कि इस पत्रकारिता, नवोदित गद्य-साहित्य और साहित्यिक पत्रकारिता का स्वरूप आरम्भ से ही विचारधारात्मक रहा है। अर्थात उपनिवेशवाद विरोधी

और लोकोन्मुख भले ही उन पत्रकारों और लेखकों ने औपनिवेशिक विदेशी सत्ता, उसके कठोर सेंसरशिप और दमनकारी प्रसाशन-तंत्र की आँखों में धूल झोंकते हुए कैसे भी संकेतात्मक, छद्म और प्रतीकवादी तरीके क्यों न अपनाएं हों। हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता के जनक भारतेंदु हरिश्चंद्र ने अपनी आँखों से सन् 1857 ई. का 'ग़दर', उसके असफल रहने पर उन प्रथम स्वाधीनता-संग्रामियों का निर्मम नरसंहार और सामान्य भारतवासियों की नृशंस दमन देखा था।

इस तरह हम देखते हैं कि हिंदी पत्रकारिता से ही साहित्यिक पत्रकारिता और गद्य साहित्य का विकास होता है और दूसरे आरम्भकाल से ही जुझारू गद्य-साहित्य और साहित्यिक पत्रकारिता का सम्बन्ध हमारे साम्राज्यवाद-विरोधी संग्राम से भी बड़ा प्रत्यक्ष और गहरा था।

इसके बावजूद हिंदी में साहित्यिक पत्रकारिता की अत्यंत संपन्न परंपरा रही है। साहित्यिक हिंदी पत्रकारिता में प्रेमचन्द की पत्रिका 'हंस' इसका सशक्त उदहारण है। 'चाँद', 'माधुरी', 'सरस्वती', 'इंदु', 'मतवाला' आदि ऐसे अन्य ज्वलंत उदहारण हैं। इन जैसी पत्रिकाओं से उस समय अनेकानेक लेखक उभरे, हिंदी साहित्य को एक दिशा मिली और अघोषित रूप से साहित्यिक हिंदी पत्रकारिता की नींव पड़ी। एक लम्बी फेहरिस्त है रचनाकारों और रचनाओं का, जो इस अघोषित साहित्यिक पत्रकारिता की देन है। इन तथा ऐसी ही पत्रिकाओं ने आधुनिक हिंदी साहित्य की भी पृष्ठभूमि तैयार की और पत्रकारिता का यह सिलसिला निरंतर आगे बढ़ता गया।

प्रेमचंद का पत्रकार रूप :

बम्बई, १९३४ ।

साहित्य, समाज और स्वदेश के सेवार्थ संकल्पित अनेक साहित्यकार हैं, जिन्होंने केवल साहित्य के सृजन से संतुष्ट न रहकर पत्रकारिता को भी साथ में अपनाया है। इसमें दो राय भी नहीं कि पत्रकारिता एक सशक्त माध्यम है जिसे अपनाकर जन मानस से सीधे जुड़ा जा सकता है। कोई भी क्षेत्र हो, चाहे वह सामाजिक, राजनैतिक या साहित्यिक हो, जन जागरण और बौद्धिक क्रांति के लिए पत्रकारिता एक अपरिहार्य साधन के रूप में सदैव स्वीकृत रहा ही है।

जहाँ तक महान कथाशिल्पी प्रेमचंद का संबंध है, तो वह भी अपनी कहानियों और उपन्यासों से इतर पत्रकारिता की महत्ता को स्वीकार कर उससे संबद्ध हुए। उन्होंने 'माधुरी', 'हंस', और 'जागरण' का संपादन कर समाज सुधार और राष्ट्रीय चेतना संबंधी

अपने विचारों द्वारा देशवासियों को सामाजिक असमानता, शोषण और अँग्रेजों की दासता से मुक्ति हेतु जागृत किया।

प्रेमचन्द के कथाकार रूप की तुलना में उनके पत्रकार रूप की चर्चा नहीं के बराबर हुई है। उनके पत्रकारीय लेखन, अनेकानेक रिपोर्ताज, लेख, टिप्पणियां, पुस्तक परिचय व समीक्षाएं वगैरह को पढ़े बगैर प्रेमचन्द के समग्र साहित्यिक अवदान को समझ ही नहीं जा सकता। "प्रेमचंद ने 1903 में स्वतंत्र पत्रकारिता प्रारंभ की थी और यह सिलसिला 1930 में 'हंस' के शुरू होने तक चलता रहा। पत्रकारीय लेखन से प्रेमचन्द का क्रम आजीवन चला। इस तरह के लेखन की शुरुआत उन्होंने ओलिवर क्रामवेल के विभिन्न प्रसंगों पर टिपण्णी लेखन से की थी जो 'आवाज़े खल्क' में 1 मई 1903 से 24 सितम्बर 1903 तक धारावाहिक छपी थी। इस पत्र के अलावा 'स्वदेश' और 'मर्यादा' में भी प्रेमचन्द जी टिप्पणियां लिखते थे। उर्दू के प्रसिद्ध पत्र 'जमाना' से तो उनका आत्मीय संबंध ही था, जो जीवनपर्यंत बना रहा। 'जमाना' में मुंशी जी रपटों व टिप्पणियों के अलावा 'रफ्तारे जमाना' के नाम से एक स्थायी स्तंभ भी लिखते थे।"7

प्रेमचंद ने अँग्रेजी सत्ता का विरोध तो किया ही भारत की उस सत्ता के विरुद्ध भी अपनी कलम चलाई जो आम जनता का शोषण करते हुए अँग्रेजी सत्ता का साथ दे रही थी। स्वराज्य कैसा होगा, इसकी व्याख्या भी वे विचारवान पत्रकार के रूप में करते रहे।

उनका कहना था कि स्वराज्य पद और अधिकार की प्राप्ति कराने के लिए नहीं, गरीब किसानों और मजदूरों के हितार्थ अनुकूल स्थितियों की सृष्टि करने के लिए होगा। स्वराज्य में दीनों-दलितों के उद्धार को वरीयता दी जाएगी। उच्च वर्ग के हितों के लिए देश की सामान्य जनता के हितों का बलिदान नहीं होने पाएगा।

प्रेमचंद की दृष्टि मानवीय संवेदना से पुष्ट थी, एक साहसिक पत्रकारिता का परिचय देते हुए उन्होंने जातिवाद, क्षेत्रवाद, विचारवाद, व्यक्तिवाद आदि का भी विरोध किया। उस समय ऐसे वाद प्रबल थे, इनके समर्थक शक्ति संपन्न थे, फिर भी प्रेमचंद झुके नहीं। अपनी पत्रकारिता को रचना और विचार की पत्रकारिता, राष्ट्रीय आंदोलन की पत्रकारिता, दीनों-दलितों के समर्थन की पत्रकारिता बनाए रहे।

प्रेमचंद की पत्रकारिता में पूर्वाग्रह को कोई स्थान नहीं था। उन्होंने अपने उन विरोधी व्यक्तियों को भी 'हंस' में बराबर स्थान दिया, जिनके विचार उनके विचारों से मेल नहीं खाते थे। पत्रकारिता का यह गुण विरले लोगों में हुआ करता है। इस दृष्टि से भी प्रेमचंद विरल पत्रकार के रूप में याद किए जाएँगे। हिंदू-मुस्लिम एकता के लिए भी प्रेमचंद अपने संपादकीयों में अपनी भावानाएँ व्यक्त करते रहे हैं।

उनका विचार था कि- 'पराधीन भारत में न हिंदू की ख़ैर है, न मुसलमान की।' हंस में जो संपादकीय टिप्पणियाँ छपा करती थीं, उनका शीर्षक 'हंसवाणी' हुआ करता था। इन 'हंसवाणियों' में प्रेमचंद की निर्भीकता, स्पष्टोक्ति, राष्ट्रीय ऊर्जस्विता, राष्ट्रीय ओजस्विता की अभिव्यक्ति हुआ करती थी।

'हंस' का प्रकाशन सन् 1930 में प्रारंभ हुआ था। सिर्फ पाँच वर्ष बीतने पर वह अखिल भारतीय पत्र के रूप में स्थापित हुआ तो इसकी पृष्ठभूमि में हंसवाणियाँ ही थीं, जिन्हें पढ़ने के लिए लोग लालायित रहा करते थे। वस्तुत: 'हंस' तत्कालीन स्वाधीनता आंदोलन का मुखपत्र जैसा बन गया था, स्वयं प्रेमचंद आंदोलन के शक्ति स्रोत जैसे मान्य हो रहे थे।

एक पत्रकार के लिए जिन अपेक्षाओं को मूर्तरूप देना आवश्यक होता है, प्रेमचंद वैसे ही पत्रकार थे, उनकी हंसवाणियों में आह्वान, आलोचना, सुझाव, विरोध, समर्थन आदि का समावेश परिवेश और परिस्थिति की आवश्यकतानुसार होता था। बहुजन हिताय में जो कर्म होता, वे उसके प्रशंसक बन जाते, परंतु इसके विपरीत वाली कार्यपद्धति की आलोचना करने से पीछे नहीं हटते थे। वह गाँधी के भक्त थे, परंतु अंधभक्त नहीं थे।

यदि प्रेमचंद कथा साहित्य के सृजन को अनवरत समर्पित रहे तो पत्रकारिता के प्रति भी उनका समर्पण अपेक्षाकृत कम नहीं माना जाएगा। 'हंस' निकालते रहने के लिए उन्हें अर्थाभाव के अलावा सरकारी दमन को भी झेलना पड़ा था। एक समय तो सरकारी दमन के विरुद्ध 'हंस' में टिप्पणी लिखने के कारण उनसे जमानत माँग ली गई थी। उन दिनों प्रेस की स्वतंत्रता आज जैसी नहीं थी।

यदि शासन के विरुद्ध कुछ लिखा जाता था, तो प्रेस को जमानत के तौर पर नकद धनराशि अदा करनी होती थी। न देने पर पत्र को बंद कर देना पड़ता था। पत्रकारिता के

प्रति वह किस सीमा तक लगनशील थे, इसका अनुमान उन सौ से अधिक टिप्पणियों से लगाया जा सकता है, जो उन्होंने 'हंस' की संपादन अवधि में लिखकर प्रकाशित की थीं।

ये टिप्पणियाँ यह भी प्रदर्शित करती हैं कि वह पत्रकार के रूप में कतने सजग थे। उन्होंने धर्म, संस्कृति, शिक्षा, राष्ट्रभाषा, समाज, महिला, स्वतंत्रता संग्राम, विश्वयुद्ध, हिंदू-मुस्लिम एकता एवं छूत-अछूत, किसान-मजदूर, स्थानीय शासन, साहित्य, राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय समस्या आदि अनेकानेक विषयों पर अपने नितांत मौलिक विचार रखे। उक्त सारी विशेषताएं प्रेमचंद जी को हिंदी-पत्रकारिता का पुरोधा और शिखर-शलाका पुरुष तो सिद्ध करती ही हैं, वे यह भी बताती हैं कि प्रेमचंद जी कथाकार-कहानीकार की तरह पत्रकार कला में कला-नैपुण्य और कमालेफन भी हैं।

वह अपने समकालीन किसी भी महान व्यक्ति के विचारों के अनुयायी नहीं रहे, सच तो यह है कि किसी दूरदर्शी, निष्पक्ष और प्रबुद्ध पत्रकार से ऐसी ही आशा की जाती है।

हंस :

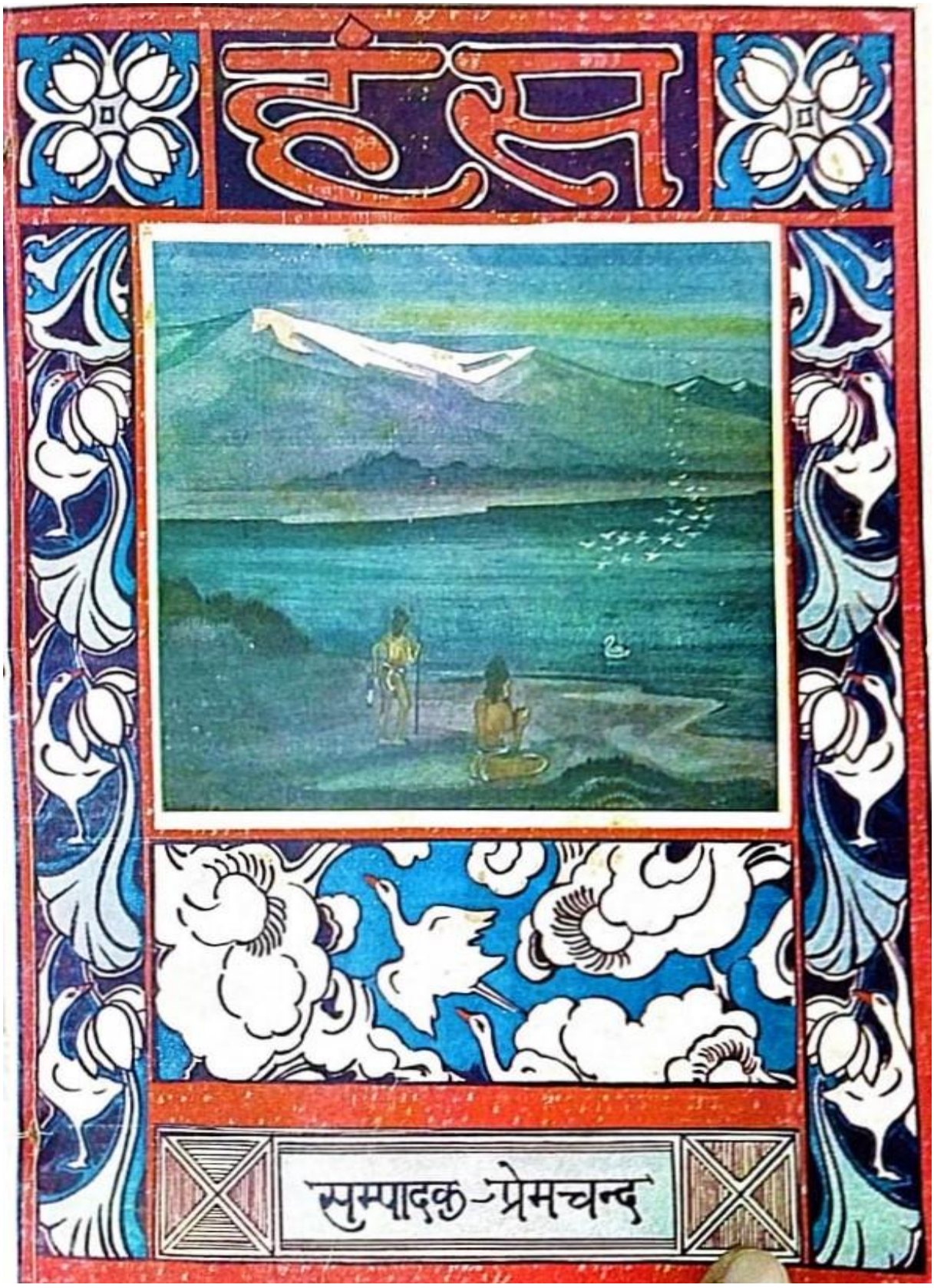

प्रेमचंद जी का समय महात्मा गाँधी के नेतृत्व में स्वाधीनता के लिए अहिंसात्मक युद्ध का युग था। सविनय अवज्ञा, स्वदेशी आंदोलन और नमक सत्याग्रह से देशभर में उथल-पुथल थी। राष्ट्रप्रेम, राष्ट्रीय चेतना और राष्ट्रमुक्ति के पांचजञ्य की सर्वत्र अनुगूँज थी। ऐसी स्थिति-परिस्थिति में महात्मा गाँधी जी के समर्थक प्रेमचंद जी केवल साहित्य के सृजन तक सीमित नहीं रह सके।

'हंस' के प्रकाशन के पूर्व उन्होंने अपने मित्र सुप्रसिद्ध कवि जयशंकर प्रसाद जी को पत्र लिखा- "काशी से कोई साहित्यिक पत्रिका न निकलती थी। मैं धनी नहीं हूँ, मजदूर आदमी हूँ, मैंने हंस निकालने का निश्चय कर लिया है।"8 'हंस' का नामकरण जयशंकर प्रसाद जी ने ही किया था।

12 फरवरी 1930 को प्रेमचन्द जी ने निगम साहब को पत्र लिखा- "मैं फागुन यानि नये साल से एक हिंदी रिसाला 'हंस' निकालने जा रहा हूँ। 64 सुफहात का होगा और ज्यादातर अफ़सानो से ताल्लुक रखेगा। है तो हिमाकत (मुर्खता) ही, दर्दे सर बहुत और नफा कुछ नही, लेकिन हिमाकत करने को जी चाहता है। जिंदगी हिमाकतो में गुजर गयी, एक और सही।"9

इस प्रकार 'हंस' की नीति के बारे में घोषणा करते हुए प्रेमचन्द जी ने लिखा- "'हंस' के लिए यह परम सौभाग्य की बात है कि उसका जन्म ऐसे शुभ अवसर पर हुआ है जब भारत में एक नये युग का आगमन हो रहा है, जब भारत पराधीनता की बेड़ियों से निकलने के लिए तड़पने लगा है। इस तिथि की यादगार एक दिन देश में कोई विशाल रूप धारण करेगी।"10

'हंस' का प्रकाशन हिंदी साहित्य के महान विभूति उपन्यासकार और कथा सम्राट मुंशी प्रेमचंद ने शुरू किया था। प्रेमचन्द जी ने 'हंस' का प्रकाशन 10 मार्च 1930 ई. में वसंत पंचमी के दिन वाराणसी से शुभारंभ किया था। देश प्रेम साहित्यिक अभिरुचि एवं साहित्य सेवा की अदम्य लालसा ने उन्हें काशी से एक साहित्यिक पत्रिका निकालने के लिए प्रेरित किया। इसके प्रथम अंक के संपादकीय में उन्होंने लिखा था कि- "'हंस' भी मानसरोवर की शांति छोड़कर, अपनी नन्ही-सी चोंच में चुटकी भर मिट्टी लिये हुए समुद्र

पाटने, आजादी की जग में योग देने चला है। समुद्र का विस्तार देखकर उसकी हिम्मत छूट रही है, लेकिन संघ-शक्ति ने उसका दिल मजबूत कर दिया है।"11 साहित्य और समाज में वह उन गुणों का परिचय करा ही देगा, जो परंपरा ने उसे प्रदान किए हैं।

अपनी इस प्रथम संपादकीय घोषणा के अनुसार उन्होंने 'हंस' को राष्ट्र की अस्मिता और राष्ट्रीय आंदोलन का मुखपत्र बनाए रखा। उनकी संपादकीय टिप्पणियों में प्रखर राष्ट्रीय चेतना भरी रहा करती थी। इस कारण उन्हें शासन का कोपभाजन भी बनना पड़ा।

हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता में 'हंस' का मुकाम अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। अब तक के इतिहास में साहित्यिक पत्रिका 'सरस्वती' के बाद जो पत्रिका सबसे अधिक प्रभावशाली रही, वह 'हंस' है। 'हंस' गांधी युग की प्रमुख साहित्यिक मासिक पत्रिका थी। अनेकोनेक प्रतिभाशाली लेखकों, कवियों, नाटककारों, कहानीकारों को जन्म देने, निखारने में इसने महत्वपूर्ण योगदान दिया। इतना ही नहीं इस पत्रिका ने प्रगतिवादी आन्दोलन को जन्म दिया। इसके द्वारा प्रेमचन्द जी ने हिंदी भाषा ही नहीं स्वतंत्रता की भी लड़ाई लड़ी।

1933 ई. में पत्रिका का 'काशी विशेषांक' प्रकाशित किया था। जिसे हिंदी साहित्य की पत्रकारिता में कीर्ति स्तंभ की तरह माना जाता है। 'हंस' संभवतः आज की सर्वाधिक महत्वपूर्ण साहित्यिक पत्रिका है।

हंस की विशेषताएँ :

'हंस' अपने समय की एक मात्र वह पत्रिका थी जो गरीबों, असहायों, किसानों, दलितों, मजदूरों की बात करती थी। पत्रकारिता के क्षेत्र में 'हंस' ने एक नये युग का सूत्रपात किया। इसके साथ ही 'हंस' ने सदैव राष्ट्र और राष्ट्रभाषा को सर्वोपरि रखा।

'हंस' राष्ट्र की अस्मिता और राष्ट्रीय आन्दोलन का मुखपत्र बना रहा। भले ही इसके लिए उसे असहनीय कष्ट सहने पड़ें हों।

समय-समय पर 'हंस' के संपादक बदलते गये। संपादकों की अपनी विचारधाराएँ रही जिसका प्रभाव 'हंस' पर पड़ता रहा किन्तु 'हंस' ने अपनी अस्मिता पर आंच नहीं आने

दी। वह पानी में नमक की तरह घुलता रहा और प्रेमचंद के विचारों को मिटने नहीं दिया उसे आगे बढ़ाता रहा।

हंस और प्रेमचंद :

हिंदी सर्जना एवं संवेदना के भूगोल में दुर्लभ व्यक्तित्व के साथ पैदा हुए कथाकार, कहानीकार और पत्रकार प्रेमचंद भारतीय संस्कृति के उद्गाता हैं। हमें बेबाक स्वीकार करना पड़ेगा कि प्रेमचंद हिंदी पत्रकारिता के एक विशिष्ट कालखंड की उस तेजस्वी परंपरा की लगभग आखिरी निशानी थे, जिसकी चमक में खड़ी हिंदी पत्रकारिता का स्वर्णयुग बनता है। 'हंस' का प्रकाशन 10 मार्च 1930 ई. को 'वसंत पंचमी' के दिन वाराणसी से हुआ। इसके संपादक मुंशी प्रेमचन्द थे। प्रेमचन्द के संपादकत्व में यह पत्रिका हिंदी की प्रगति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वे सन् 1930 से लेकर सन् 1936 तक 'हंस' के सम्पादक रहे। 'हंस' के माध्यम से वे समाज के उन कोनों-अंतरों में फोकस डालते थे, जो प्रायः अदेख और पीड़ित हैं।

प्रेमचंद के मासिक पत्र 'हंस' ने हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता को नई दिशा दी। 'हंस' के प्रथम अंक में सम्पादकीय लेख में प्रेमचंद जी ने लिखा- "'हंस' भी अपनी चोंच में थोड़ीसी मिट्टी लेकर देश की आज़ादी की लड़ाई में कूद पड़ा है। 'हंस' के आत्मकथांक, स्वदेशांक, काशी अंक आदि विशेषांकों के माध्यम से हिंदी पत्रकारिता को जो उच्च स्तर दिया, वो आज भी स्मरणीय है। 'हंस' एक समय राष्ट्र का मुख पत्र बन गया था। इसमें विभिन्न विषयों के समावेश के साथ अंतर प्रांतीय साहित्य का भी समावेश भी रहता था।"12

'हंस' के प्रथम अंक में ही प्रेमचन्द जी की दो कहानियां 'जुलूस' व 'परमेश्वर', जयशंकर प्रसाद जी की कहानी 'महुआ', विनोद शंकर व्यास की कहानी '?' शीर्षक से छपी, सिद्धनाथ माधव आगरकर की 'परख', राजेश्वर प्रसाद सिंह की 'हार', जैनेन्द्र कुमार की 'फोटोग्राफी', चेखव की एक कहानी का अनुवाद 'दवा-फरोश', मिलिंद कवि की कविता 'एक किरण' तथा केदार मिश्र 'प्रभात' ने 'दैनिक जीवन में कविता की आवश्यकता' पर प्रकाश डाला। 'मुक्ता-मंजुषा' में हिंदी, उर्दू, गुजराती, मराठी आदि भाषाओँ में विशिष्ट

पत्रों की उपयोगी सामग्री का सार संकलित किया गया। इस प्रथम अंक ने ही 'हंस' को हिंदी की साहित्यिक राष्ट्रीयता के प्रतिनिधि के रूप में देश के समक्ष प्रस्तुत किया। प्रेमचन्द जी 'हंसवाणी' (संपादकीय) के द्वारा राष्ट्रीय विचारधारा प्रस्तुत किए। संपादकीय का अंश प्रस्तुत है- "न डोमिनियन मांगे से मिलेंगा, न स्वराज्य। जो शक्ति डोमिनियन छीनकर ले सकती है, वह स्वराज्य भी ले सकती है।..... डोमिनियन पक्ष को गौर से देखिए, तो उसमें हमारे राजे-महाराजे, हमारे जमींदार, हमारे धनी-मानी भाई ही ज्यादा नजर आते हैं। क्या इसका यह कारण है कि वे समझते हैं कि स्वराज्य की दशा में उन्हें बहुत-कुछ दबकर रहना पड़ेगा? स्वराज्य में मजदूरों और किसानों की आवाज़ इतनी निर्बल न रहेगी? क्या यह लोग उस आवाज के भय से थरथरा रहे हैं? हमें तो ऐसा ही जान पड़ता हैं। वे अपने दिल में समझ रहे हैं कि उनके हितों की रक्षा अंग्रेजी-शासन ही से हो सकती है। स्वराज्य कभी उन्हें गरीबों को कुचलने और उनका रक्त चूसने न देगा।"13

'हंस' का 'आत्मकथांक' अंक जनवरी-फरवरी 1932 में संयुक्तांक के रूप में प्रकाशित हुआ। इस अत्मकथांक में लगभग पचास लेखकों के लेख प्रकाशित हुए। जिसमें जयशंकर प्रसाद, प्रेमचन्द, नंददुलारे वाजपेयी, भगवती चरण वर्मा, निराला, सियाराम शरण गुप्त, जैनेन्द्र तथा नये लेखकों में अज्ञेय, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, सुभद्राकुमारी चौहान, उषा मित्रा, अमृतलाल नागर, अंचल, राधाकृष्ण आदि की रचनाएँ प्रकाशित हुई।

'हंस' का 'काशी अंक' अक्टूबर-नवम्बर 1933 में संयुक्तांक के रूप में प्रकाशित किया गया। इस 'काशी अंक' विशेषांक में कई लेखकों के लेख, कहानी, कविता प्रकाशित हुए। जिसमें 'श्लोक' लेख आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, 'काशी और उसके तीन रूप' डॉ. भगवानदास जी, 'सारनाथ' पन्नालाल जी, 'काशी : हिन्दू-संस्कृति का केंद्र' राधेश्याम शर्मा, 'भारत के ब्रिटिश कालीन राजनीतिक जीवन में काशी का स्थान' संपूर्णानंद, 'काशी और हिंदी-साहित्य' कृष्णशंकर शुक्ल, 'काशी से निकलने वाले सामयिक पत्र और पत्रिकाएं' पं. केदारनाथ पाठक, 'काशी और उसके जैनतीर्थ' कैलाशचंद्र, 'काशी की गलियां' मनोरमा देवी, 'काशी के तीर्थाध्यक्ष' शिवप्रसाद मिश्र, 'काशी के निवासियों की विशेषताएं' कृष्णलाल मेहता, 'हिन्दू विश्वविद्यालय काशी की कुछ विशेषताएं' प्रो. मनोरंजन

प्रसाद, 'काशी-विश्वनाथ' श्रीकृष्ण हसरत, 'काशी के नवयुवक कवि' कमला प्रसाद अवस्थी, 'काशी और वर्तमान हिंदी साहित्य' कृष्णदेव प्रसाद गौड़, 'काशी का प्राचीन कवि समाज' ठाकुर बैजनाथ सिंह, 'काशी नरेश' देवीदत्त मिश्र इत्यादि लोगों का लेख प्रकाशित हुआ जो हिंदी साहित्य में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

इसी तरह 'हंस' का फरवरी 1934 अंक प्रकाशित किया गया। जिसमें अनेक लेखक-लेखिकाओं की रचनाएँ छपी। कुछ का विवरण निम्न है- 'बादल' कविता रामकुमार वर्मा, 'सप्ताह के दिन और उसकी प्रवृत्ति' हजारीप्रसाद द्विवेदी, 'अतीत के गीत' कहानी दुर्गादत्त त्रिपाठी, 'राकेश' कविता राजराजेश्वरी देवी, 'ग्रीस की एक प्रेम कहानी' युधिष्ठिर भार्गव, 'पतित' नाटक भुवनेश्वर प्रसाद, 'कवि की आकुल आत्मा' इंदु सकरापारी, 'कविता में दोष' कहानी जनार्दन राय, 'प्रथम दृष्टि में' कहानी राधाकृष्ण, 'मृग-तृष्णा' कहानी उपेन्द्रनाथ 'अश्क', 'प्रेम' कहानी रघुनाथ सिंह, नीरक्षीर, हंसवाणी इत्यादि इस अंक की विशेषता रही।

इसी तरह 'हंस' का जून 1934 अंक प्रकाशित हुआ। जिसमें अनेक लेखक-लेखिकाओं की रचनाएँ छपी। जिनका विवरण निम्न है- 'कसक' कविता सियाराम शरण गुप्त, 'खँडहर' कविता सीताराम, 'आँखें' कहानी कृष्णनंदन सहाय, 'पथिक' कहानी उषादेवी, 'अनुभूति पर एक दृष्टि' आरसी प्रसाद सिंह, 'मेरी लद्दाख यात्रा' राहुल सांस्कृत्यायन, 'विध्वंस की होली' कहानी शिवरानी देवी, 'प्रणय की प्यास' कविता मुरलीधर श्रीवास्तव, 'सहयोगी' कहानी श्रीराधाकृष्ण, मुक्त-मंजूषा, नीरक्षीर, हंसवाणी आदि लोगों के लेख, कहानी, कविता का प्रकाशन किया गया।

24 मार्च 1931 को 'शहीद दिवस' मनाया गया। उस दिन देशवासियों का खून खौल रहा था। उसी समय कांग्रेस का अधिवेशन हुआ था। उसकी समाप्ति पर उन्होंने 'हंस' में कांग्रेस नामक संपादकीय में जो विचार व्यक्त किए थे, उसका एक अंश इस प्रकार है- "अब कांग्रेस का ध्येय राष्ट्र के सामने है। उसके विधान में मजदूरों, किसानों और गरीबों के लिए वही स्थान है, जो अन्य लोगों के लिए। वर्ग, जाति, वर्ण आदि के भेदों को उसने एकदम मिटा दिया है। हम कांग्रेस को इस प्रस्ताव के लिए बधाई देते हैं। स्वराज्य की इस व्याख्या को लाखों की संख्या में बांटना चाहिए। ऐसा कोई घर न होना चाहिए उसमें उसकी एक

प्रति न पहुचे। अब जनता को इस विषय में कोई संदेह न रहेगा कि वह किन स्वत्वों के लिए लड़ रही है, स्वराज्य से उसको क्या लाभ होगा और उसकी प्राप्ति का क्या मार्ग है।"14

हम कांग्रेस के इस प्रस्ताव के लिए बधाई देते हैं, स्वराज्य की इस व्याख्या को लाखों की संख्या में बाँटना चाहिए, ऐसा कोई घर न होना चाहिए, जिसमें इसकी एक प्रति न पहुँचे। अब जनता को इस विषय पर कुछ संदेह न रहेगा कि वह किन स्वत्वों के लिए लड़ रही है। यह टिप्पणी प्रेमचंद की जागरुक और सुलझी हुई पत्रकारिता का द्योतक है, इसमें समर्थन है, सुझाव भी है।

'हंस' में प्रेमचन्द की लगभग तीन दर्जन कहानियां प्रकाशित हुई थीं। ये वे कहानियां हैं जिनमें उनकी कहानी कला अपने निखार पर है। प्रेमचन्द 'हंसवाणी' स्तंभ में सम्पादकीय लिखते थे। हंस में प्रेमचन्द के लगभग 16 लेख तथा 'नीर-क्षीर' के अंतर्गत लगभग सवा सौ पुस्तकों की समीक्षाएं भी प्रकाशित हुई। 'हंस' के तीन अत्यंत महत्वपूर्ण विशेषांक 'स्वदेशांक', 'अभिनन्दनांक' और 'काशी अंक' थे, जो क्रमशः अक्टूबर-नवम्बर 1932, अप्रैल 1933 और अक्टूबर-नवम्बर 1933 में प्रकाशित हुए थे। 'हंस' के अन्य विशेषांकों में प्रेमचन्द स्मृति अंक, एकांकी नाटक अंक, रेखाचित्र अंक, कहानी अंक, प्रगति अंक तथा शांति अंक विशेष रूप से उल्लेखनीय रहे। 'हंस' से अंग्रेजी सरकार ने दो बार 1932 और 1936 में जमानत मांगी थी। "महात्मा गांधी जी की प्रेरणा से 'हंस' को 'भारतीय साहित्य परिषद्' का मुखपत्र बनाया गया और कन्हैयालाल मुंशी तथा प्रेमचन्द दोनों 'हंस' के संपादक बने। भारतीय साहित्य परिषद् के मुखपत्र के रूप में 'हंस' का पहला अंक अक्टूबर 1935 में निकाला। जून 1936 के अंक में सेठ गोविन्द दास के एक नाटक के प्रकाशित होने पर सरकार ने पुनः 'हंस' से जमानत मांग ली, पर गांधी जी ने जमानत देने से अस्वीकार कर दिया। पर प्रेमचन्द ने जमानत दे दी और 'हंस' का प्रकाशन जारी रहा।"15 संपादक के स्थान पर कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी और प्रेमचन्द के नाम 'हंस' के आवरण पर छपने लगा तो इन दोनों नामों के कारण लोगों में भ्रम हो गया और प्रेमचन्द

को लोग 'मुंशी प्रेमचंद' लिखने की भूल करने लगे। प्रेमचन्द जी अपने नाम के साथ कभी भी मुंशी शब्द का प्रयोग नहीं किया।

'हंस' के प्रकाशन से एक नए युग का सूत्रपात हुआ। राष्ट्र एवं राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रति उनकी निष्ठां हंस के प्रत्येक अंक से परिलक्षित होता है। गांधी जी के विचारों से प्रभावित प्रेमचन्द जी ने अपनी बीस वर्षों की नौकरी छोड़कर देश की स्वतंत्रता हेतु 'कलम का सिपाही' के रूप अपना जीवन समर्पित कर दिया। जैसा कि स्वयं उन्होंने लिखा- "यह 1920 की बात है। असहयोग आन्दोलन जोरों पर था। जलियांवाला बाग़ का हत्याकांड हो चुका था। उन्हीं दिनों महात्मा गांधी जी ने गोरखपुर का दौरा किया। गाजी मियां के मैदान में ऊँचा प्लेटफार्म तैयार किया गया। दो लाख से कम का जमाव न था। क्या शहर, क्या देहात, श्रद्धालु जनता दौड़ी चली आती थी। ऐसा समारोह मैंने अपने जीवन में कभी न देखा था। महात्मा गांधी जी के दर्शनों का यह प्रताप था, कि मुझ जैसा मरा हुआ आदमी भी चेत उठा। उसके दो-ही-चार दिन बाद मैंने अपनी 20 साल की नौकरी से इस्तीफ़ा दे दिया।"16

'हंस' अपनी अग्रतर नीतियों के कारण ब्रिटिश सरकार की आँखों की किरकिरी बना हुआ था। परिणामस्वरुप ब्रिटिश सरकार ने जब 'हंस' पत्रिका को जब्त करने का आदेश दिया तो संपादक मुंशी प्रेमचन्द झुके नहीं। इंडियन प्रेस आर्डिनेन्स 1930 के अंतर्गत 'हंस' को कई बार जमानत देने का सरकार ने आदेश दिया पर प्रेमचन्द ने बीच-बीच में कई बार उसका प्रकाशन स्थगित करना ही उचित समझा।

'हंस' जब घाटा में चलने लगा, तो उसे 'हिंदी परिषद' को दे दिया था कि इसका नुकसान कहाँ तक बर्दास्त किया जाय। "महात्मा गांधी जी के हाथों कोई दस महीने तक रहा, उसके बाद जुलाई के महीने से 'हंस' से जमानत मांगी गई और 'हिंदी-परिषद' ने इसको बन्द कर दिया।"17 प्रेमचन्द जी बीमार पड़े थे लेकिन 'हंस' का बन्द होना बर्दाश्त न हुआ। उन्होंने शिवरानी देवी से कहा- "रानी एक हज़ार रूपया बैंक से निकालकर जमा करा दो, और 'हंस' को फिर से जारी करा दो।"18 जमानत जमा होने पर हंस चालू हो गया। 8 अक्टूबर 1936 को प्रातः प्रेमचन्द जी का निधन हो गया। उस समय जैनेन्द्र उनके समीप थे। प्रेमचन्द जी के बाद 'हंस' शिवरानी देवी के संपादकत्व में निकलता रहा।

हंस और शिवरानी देवी :

प्रेमचन्द स्मारक
हंस
जून १९३७
सहशिक्षा— गिजुभाई बधेका
गतिशील चिंतन— हजारीप्रसाद द्विवेदी
दर्पहरण— रवीन्द्रनाथ ठाकुर
काल्पनिक और वास्तविक— जनार्दनराय
एक पहेली— 'पहाड़ी'
एक भाषण— जैनेन्द्रकुमार
मुक्ता-मंजूषा, नीर-क्षीर, सामयिक, इत्यादि इत्यादि...
सम्पादिका
शिवरानी देवी

प्रेमचन्द के बाद 'हंस' का सम्पादन उनकी पत्नी शिवरानी देवी ने किया। प्रेमचन्द के गुजर जाने के बाद उनके कई मित्रों ने शिवरानी देवी को 'हंस' बन्द करने की सलाह दे डाली। लेकिन उनका मन नहीं माना, उन्होंने लोगों को जवाब दिया- "भाई, मैं इसको छोड़ नहीं सकती।.... जब मेरे पति, पिता होकर 'हंस' को न छोड़ सके, तो मैं तो माँ हूँ। और माँ शायद बेकार और निकम्मे बेटे को, फिर ऐसी हालत में जब उसका पिता न हो, सबसे ज्यादा प्यार करती है।.... माता ही ऐसी है जो अच्छे बुरे सभी को छाती से लगाये रहती है। यही हालत मेरी और मेरे 'हंस' की है।"19 जिस प्रकार प्रेमचंद 'हंस' को अपना बेटा मानते थे ठीक उसी तरह उनके न रहने पर शिवरानी देवी 'हंस' को अपना बेटा मानने लगी हैं। बेटा भले ही निकम्मा हो जाय किंतु माता सदैव उसे ह्रदय से लगाकर रखती है। ठीक इसी तरह 'पुत्र कुपुत्रो जायते वा माता कुमाता न भवति।' और ऐसा पुत्र जिससे उसका पति अधिक प्रेम करता है, उसे तो पत्नी पति के न रहने पर और अधिक प्रेम करेगी। शिवरानी देवी 'हंस' से इसी तरह प्रेम करती हैं भले ही वह उन्हें आर्थिक सपन्नता दे पाने में सक्षम न हो तो भी। शिवरानी देवी कहती है कि- "हंस' आज भी जीवित है, परन्तु 'हंस' का वह मोती कहाँ? शायद मैं इस लिए जीवित हूँ कि मेरे देवता जिस छोटे से पौधे को छोड़ गये हैं, उसको मैं हृदय के खून से सींच कर बड़ा कर जाऊं।"20 दरअसल, वह प्रेमचन्दमय हो चुकी थीं। जीते जी चाहे जो उनसे कहती-लड़ती-विवाद करती रही हों, उनके जाने के बाद और अधिक उनकी हो गईं। प्रेमचंद जब तक जीवित थे तब भले उनके विचारों से पूर्णतः वे सहमत नही रही होंगी किंतु आज वे उनके अधूरे कार्य को पूर्णता प्रदान करने का प्रयास कर रही हैं।

शिवरानी देवी के सम्पादन में 'हंस' का अप्रैल 1937 अंक प्रकाशित हुआ। इस अंक में जयशंकर प्रसाद का निबंध 'यथार्थवाद और छायावाद', जैनेन्द्र कुमार की कहानी 'खोखला ढोल', आनन्द कौसल्यायन की 'राष्ट्रलिपि और राष्ट्रभाषा', वर्नार्ड शा की एकांकी नाटक 'सृष्टि का आरम्भ', देवीशंकर वाजपेयी का 'साहित्य का दृष्टिकोण, आदर्शवाद अथवा यथार्थवाद', श्नेहरश्मि की 'बड़ी दीदी या जिज्जी', उषादेवी मिश्रा की कहानी 'क्षमा', भुवनेश्वर प्रसाद की 'मां-बेटे', लक्ष्मीनारायण साहू की 'उत्कल साहित्य में हास्य-रस', रामस्वरूप

व्यास की 'कंकाल का सामाजिक दृष्टिकोण', कमला कुमारी की कविता 'खोया-प्यार', वामन चोरघड़े की कहानी 'मानवता के मार्ग', विनय कुमार की कविता 'वसंत प्रभा में', स्व. प्रेमचन्द की 'उर्दू, हिंदी और हिन्दुस्तानी', मुक्ता मंजूषा, नीर-क्षीर इत्यादि रचनाएँ प्रकाशित हुई जो हिंदी साहित्य के साथ ही साथ वर्तमान समाज के दृष्टिकोण से भी महत्वपूर्ण है। इस प्रकार शिवरानी देवी के प्रयास से 'हंस' निरंतर चलता रहा।

शिवरानी देवी के ही सम्पादन में 'हंस' का जून 1937 अंक प्रकाशित हुआ। इसके सम्पादकीय में शिवरानी जी लिखती है कि- "आज नौ मास होने को आए मैंने 'हंस' का संपादन किया। यह तो मैं पहले ही कह चुकी थी कि मैंने यह काम केवल लाचारी की ही हालत में अपने ऊपर लिया है। मेरी क्षमता इतनी कभी न थी कि मैं एक मासिक का कार्य संभाल सकती। यह मैं इतने दिनों तक कर भी कैसे पाई, इसका रहस्य है। शुभेच्छुकों तथा प्रियजनों ने मेरे साथ जो पूर्ण सहयोग किया, उसी के बल पर ही तो मैं 'हंस' को इस रूप में निकल सकी जिसमें कि वह निकालता रहा है।"21 इस अंक में कई लेखकों के लेख प्रकाशित हुए जिसमें 'सहशिक्षा' गिजुभाई बधेका, 'गतिशील चिंतन' हजारीप्रसाद द्विवेदी, 'दर्पहरण' रविंद्रनाथ ठाकुर, 'काल्पनिक और वास्तविक' जनार्दन राय, 'एक भाषण' जैनेन्द्र कुमार, 'कहानी की करामात' लक्ष्मीधर नायक, 'भिखारी बालक' कहानी मार्सल, 'आंसू' कविता मंगलामोहन, 'वर्तमान सभ्यता और उसका भविष्य' निबंध कामेश्वर शर्मा, मुक्ता-मंजूषा, नीर-क्षीर, समसामयिक इत्यादि रचनाएँ प्रकाशित हुई।

हंस और बाबूराव विष्णु पराड़कर :

बाबूराव विष्णु पराड़कर हिंदी जाने-माने पत्रकार, साहित्यकार एवं हिंदीसेवी थे। उन्होंने हिंदी दैनिक आज का संपादन किया। आजादी के आन्दोलन के समय पराड़कर जी ने अखबार का उपयोग तलवार की तरह किया। उनकी पत्रकारिता ही क्रांतिकारिता थी। उनके समय में पत्रकारिता एक मिशन हुआ करता था।

प्रेमचंद जी के देहावसान के पश्चात् 'हंस' का मई 1937 का अंक 'प्रेमचंद स्मृति अंक' के रूप में बाबूराव विष्णु पराड़कर जी के संपादन में प्रकाशित हुआ था। पराड़कर जी सम्पादकीय में लिखते है कि- "प्रेमचंद जी का स्थूल शरीर आज हमारे सामने नहीं है पर उनकी आत्मा हम सब में है और हिंदी साहित्य को वह सदैव प्रभावित करती रहेगी। संभव है, और हम इसके लिए परमात्मा से प्रार्थना भी करते हैं, कि हिंदी साहित्य को प्रेमचंद जी से भी अधिक प्रतिभाशाली लेखक शीघ्र मिल जाय, क्योंकि उसके लिए उपयुक्त भूमि प्रेमचंद जी ने तैयार कर दी है।"22 इसी प्रेमचंद स्मृति अंक में शिवरानी देवी का लेख 'मैं लूट गई' में प्रेमचंद के बारे में अपने साथ बिताये गए लम्हों का मार्मिक वर्णन किया है। शिवरानी जी लिखती है कि- "आज मैं लूट गई हूँ, मेरी समस्त निधि खाली हो गई है। आज मुझे अपने ऊपर दुःख होता है कि मैं कितनी अभागिन हूँ। मेरा समस्त विचार और विश्वास उखड़ रहे हैं। ईश्वर के न्याय पर भी मेरा विश्वास घटता चला जा रहा है। यह तो मेरे जीवन की अमावस्या है। बार-बार यही स्मृति मेरे मन में आती है कि वे कितने महान थे, देवता थे और मैंने उन पर शासन किया। वे मेरे इतने निकट थे कि मैं उनके देवत्व को पहिचान तक न सकी। मुझमें क्या था- फिर भी उन्होंने मेरा उद्धार किया, प्यार किया और सम्मान सहित अपने हृदय के ऊँचें से ऊँचें आसन पर बिठाया।"23 जैनेन्द्र कुमार का लेख 'प्रेमचंद : मैंने क्या जाना और पाया', इलाचंद्र जोशी का 'प्रेमचंद जी की कला और उनका मनुष्यत्व', रामनरेश त्रिपाठी 'प्रेमचंद जी की याद', चन्द्रगुप्त विद्यालंकार 'महान साहित्यकार की स्मृति में', जमनालाल जी बजाज 'श्रद्धांजलि', हरिभाऊ उपाध्याय 'प्रेमचंद जी की देन', उदयशंकर भट्ट 'श्री प्रेमचंद की अंतर्दृष्टि', उपेन्द्रनाथ 'अश्क' की 'प्रेमचंद और देहात', रामवृक्ष बेनीपुरी 'प्रेमचंद जिंदाबाद', धनीराम प्रेम 'मेरा भी कुछ खो गया है',

ब्रजनंदन शर्मा 'दक्षिण भारत में प्रेमचंद', जनार्दन राय 'प्रेमचंद जैसा मैंने पाया', मुहम्मद आकिल 'मुंशी प्रेमचंद मरहूम', 'प्रेमचंद मेरी निगाहों में' प्रो. अशफाक हुसैन, 'प्रेमचंद जी की कुछ स्मृतियाँ' अहमद अली, 'प्रेमचंद जी : मनुष्य और लेखक के रूप में' प्रो. रघुपति सहाय, 'प्रेमचंद : भारतीय कृषकों का कंठ स्वर' प्रियरंजन सेन, 'प्रेमचंद की कृति' बाबूराव विष्णु पराड़कर इत्यादि लोगों ने प्रेमचंद जी के स्मृति में अपना लेख लिखा। यह अंक प्रेमचंद जी को जानने समझाने का एक महत्वपूर्ण साधन है।

हंस और जैनेन्द्र कुमार :

हिंदी साहित्य को नई दिशा देने वाले साहित्यकार जैनेन्द्र कुमार ने अपनी रचनाओं में मुख्यपात्र को रूढ़ियों, प्रचलित मान्यताओं और प्रतिष्ठित संबंधों से हटकर दिखाया, जिसकी आलोचना भी हुई। जीवन और व्यक्ति को बंधी लकीरों के बीच से हटाकर देखने वाले जैनेन्द्र कुमार के साहित्य ने हिंदी साहित्य को नये विचारों से अवगत कराया। जैनेन्द्र कुमार के संपादन में 'हंस' का जुलाई 1937 का अंक प्रकाशित हुआ। एक संपादक के रूप में जैनेन्द्र जी ने भरपूर कोशिश की है कि 'हंस' जिसके लिए जाना जाता है वही 'हंस' पाठकों के बीच पहुचें।

शिवरानी देवी ने 'हंस' का संपादन विश्वासपूर्वक जैनेन्द्र कुमार को दे दिया। जैनेंद्र कुमार उससे विमुख नहीं होना चाहते थे। वे शिवरानी देवी को धन्यवाद करते हैं कि आपने हमारे ऊपर विश्वास किया। मुश्किल की इस घड़ी में जैनेन्द्र जी 'हंस' को लेकर आगे बढ़ते हैं और उसमें योगदान देना शुरू करते हैं। वे लिखते हैं कि "प्रेमचंद जी आज स्वर्गीय हैं। 'हंस' उन्होंने बनाया। अपना तन काट कर उसे पाला। उसके बारे में उनकी अभिलाषाओं को जानने का मुझे मौका मिला है। वे ऊँची थीं, पवित्र थीं, पर 'हंस' अनुकूल पनप नहीं रहा था इससे वे अभिलाषाएं उठती थीं, तो दबे भाव से। पंख खोलकर उड़ने का उन्हें अवसर नहीं आया। पर मैं कहता हूं कि उन इरादों की ऊंचाई तक 'हंस' चाहे कभी न पहुंचे, पर उसे उड़ना होगा, उसी ओर उड़ना होगा, निराश आंखों से उस ऊंचाई को देखकर पस्त नहीं बैठ रहना होगा। उड़ते-उड़ते थक जाय तो थक जाय, मर जाय तो मर भी भले जाय, पर अपनी प्रकृति छोड़े तो 'हंस' कैसा? और मैं पूछता हूं, कोई उड़ता है तो क्या इसलिए कि वह चाँद को छू ही लेगा या आसमान को नाप ही डालेगा? उड़ना इसलिए होता है कि वह और करे भी क्या? उसका यही धर्म है, यही बस है।"24

'हंस' के इस अंक में कई कहानी, कविता प्रकाशित हुई। कुछ निम्नलिखित हैं- 'सहशिक्षा' (लंबी कहानी शृंखला) गिजुभाई बधेका, 'प्रस्थान' (कविता) विनय कुमार, 'छिन्नपृष्ठा' सरस्वती पाणिग्राही, 'संत रैदास' रामचंद्र टंडन, 'विछोह' देवीलाल सामर, 'मुरब्बी' विष्णु, 'संपत्तिवाद' (कविता) जगन्नाथ प्रसाद मिलिंद, 'मुंशी जी' शियाराम शरण गुप्त, 'सुधिया' कमला देवी चौधरी, 'राजकुमार का देशाटन' जैनेंद्र कुमार, 'ढाँकर की रोमा'

जयंती पांडेय, 'एक प्रश्न' (धारावाहिक उपन्यास) जैनेंद्र कुमार, 'जीवन संध्या' उषादेवी मित्रा, 'असफलता में सफलता' मोतीचंद्र चौधरी, 'नारदजी की कैलाश यात्रा' स्व० सुब्रह्माराय भारती इत्यादि रचनाकारों की रचनाएं प्रकाशित की गई। और अंत में मुक्ता-मंजूषा, नीर-क्षीर, हँसवाणी। जैनेन्द्र जी के संपादन निकाला 'हंस' का यह पहला अंक था। जैनेन्द्र जी ने संपादक के रूप में बहुत काम किए जिससे 'हंस' के इस अंक में कोई कमी न रह जाय। पाठकों का प्यार उसी तरह मिले जिस तरह प्रेमचंद जी के हंस को मिलता था।

जैनेन्द्र कुमार के ही संपादन में 'हंस' का अगस्त 1937 अंक प्रकाशित हुआ। 'हंस' के इस अंक को निकालने में अनेक कठिनाईयों व संकटों का सामना करना पड़ा। फिरभी 'हंस' निकला। जैनेन्द्र जी सम्पादकीय में लिखते हैं कि- "जिस प्रकार जीवन एक है, व्यक्ति का व्यक्तित्व एक है, उसी तरह एक पत्र का जीवन भी एक और इकट्ठा है। वचन में और कृति में अंतर नहीं होना चाहिए, उसी तरह यह भी आवश्यक जान पड़ता है कि पत्र में जिन विचारों का स्वागत किया जाए और मुख्यतया से जिन भावनाओं का प्रचार किया जाय, वे विचार और भावनाएं खुद उस पत्र के जीवन पर भी लागू हो। नहीं तो उन विचारों और भावनाओं का कुछ भी मूल्य नहीं रह जाता।"25 इस अंक में कई महत्वपूर्ण कहानियों व कविताओं का प्रकाशन हुआ। यथा- एडवर्ड कारपेंटर की कहानी 'संपत्ति-परिग्रह का अभिशाप', भगवानदीन की 'बालशिक्षा', दिनकर की 'प्रेम', एडवर्ड कारपेंटर की कहानी 'काल और शैतान का रहस्य', 'उपयोगिता' व 'एक प्रश्न' कहानी जैनेंद्र कुमार, रमणभाई नीलकंठ की 'चिट्ठी', हरिभाऊ उपाध्याय की 'मानव जीवन की पूर्णता', रविंद्रनाथ ठाकुर की 'संस्कार', मुक्ता-मंजूषा, नीर-क्षीर, हंसवाणी इत्यादि का समावेश इस अंक में था।

जैनेन्द्र कुमार के ही संपादन में 'हंस' का सितम्बर 1937 अंक प्रकाशित हुआ। इस अंक को निकालने में बहुत परेशानी हुई, यहाँ तक कि 'हंस' को बंद करने की भी नौबत आ गयी लेकिन वो जैनेन्द्र जी का कौशल ही था जो अंततः 'हंस' निकला। जैनेन्द्र जी सम्पादकीय में उन कठिनाईयों, चुनौतियों और मजबूरियों के बारें में विस्तार से बताया हैं। इस अंक में भी कई महत्वपूर्ण लेख निकले यथा- एडवर्ड कारपेंटर की 'अभिसार', क्षितिमोहन सेन की 'मध्ययुग के संतों की सहज-साधना', भगवानदीन की (कविता) 'नीति

के दोहे', उषादेवी मित्रा 'बहता फूल', एडवर्ड कारपेंटर की कहानी 'और कोई नहीं, प्रेमी ही जान पाता है', रामचन्द्र तिवारी 'अनुसरण', श्रीकृष्ण सक्सेना की कहानी 'प्रवास-पत्र', विष्णु की कहानी 'संघर्ष के बाद', अज्ञेय की कविता 'अचरज', जैनेन्द्र कुमार की कहानी 'सत्य शिव सुंदर', आरसीप्रसाद सिंह की कविता 'गीतिका', रामनारायण विश्वनाथ पाठक की कहानी 'सरकारी नौकरी की सफलता का भेद', वामन चोराघड़ 'शीशे का जादू', उपेन्द्र नाथ 'अश्क' की कहानी 'पहाड़ों का प्रेम-मय संगीत', कृष्णचंद्र विद्यालंकार 'इतिहास का व्यापक क्षेत्र', जैनेन्द्र कुमार 'राजकुमार का देशाटन' मुक्ता-मंजूषा, नीर-क्षीर, हंसवाणी इत्यादि इस अंक में प्रकाशित हुआ था।

हंस और श्रीपत राय :

प्रेमचंद के जेष्ठ पुत्र, 'कहानी' पत्रिका के यशस्वी संपादक श्रीपतराय। पिता से विरासत में मिली पत्रिका 'हंस' का संपादन कोई आसान काम नहीं था लेकिन इसे निभाने में जिस प्रतिभा और निष्ठा का परिचय दिया वो इसको साबित करती है कि साहित्य उनकी रगों में बसता था? उन्होंने पिता की परिपाटी को आगे तो बढ़ाया ही बल्कि नई प्रतिभाओं को प्रेरित करने और उन्हें सुअवसर देने की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी भी निभाई। जैनेन्द्र जी किसी कारणवश दिल्ली चले गये। दिल्ली जाने के बाद वापस नहीं आये तो अप्रैल 1939 में 'हंस' का सम्पादन श्रीपतराय को अपने हाथों में लेना पड़ा।

'हंस' के अनेक विशेषांक प्रेमचंद जी के समय में निकले थे और कालांतर में मील का पत्थर बन गए। उनके बाद श्रीपतराय के कार्यकाल में कम से कम दो विशेषांक तो ऐसे निकले जिन्होंने हिंदी साहित्य को नई दिशा दी।

जब हिंदी में एकांकी नाटक लिखने की प्रथा नई पनप पा रही थी, केवल सर्वश्री रामकुमार वर्मा, भुवनेश्वर, उपेंद्रनाथ 'अश्क' आदि कुछ ही ऐसे लेखक थे जो इस विधा में लिख रहे थे, लेकिन उसे गंभीरता से लेने वाले बहुत कम लोग थे। ऐसे में 'हंस' ने हिंदी एकांकी को लेकर एक विशेषांक निकाला। उसमें इस विधा को लेकर जहां कई नए नाटक

प्रकाशित हुए वहीं उसकी उपयोगिता को लेकर एक लंबी बहस शुरू हो गई। उसके बाद हिंदी संसार में देखते-देखते एकांकी नाटकों का लेखन और प्रकाशन शुरू हो गया।

"अपनी परंपरा के अनुरूप 'हंस' ने सन् 1940 में रेखाचित्र विशेषांक प्रकाशित किया और इस विधा ने भी शीघ्र ही अपनी स्वतंत्र सत्ता स्थापित कर ली। उन दिनों गद्य गीत लिखने की भी प्रथा थी। 'हंस' में अनेक सुंदर गद्य गीत प्रकाशित हुए। कितनी विधाओं को पुनर्जीवित किया 'हंस' ने और कितने नए लेखकों को जन्म दिया।"26 श्रीपतराय की खूबी थी कि उनके समकक्ष लेखकों का उन्हें भरपूर सहयोग मिला।

हंस और शिवदान सिंह चौहान :

श्रीपतराय के बाद 'हंस' का सम्पादन शिवदान सिंह चौहान ने किया। उन्होंने बहुत महत्वपूर्ण काम किया। "अमृतराय ने शिवदान जी को इलाहाबाद से बनारस भेजे 'हंस' के संपादन का दायित्व सम्भालने के लिए, शिवदान सिंह चौहान कम्युनिष्ट पार्टी के सदस्य बन चुके थे, लेखक थे, आलोचक थे, सक्रीय कार्यकर्ता थे। सन् 1941 में शिवदान सिंह चौहान ने 'हंस' का संपादन सम्भाला, लेकिन अगस्त 1942 में भारत छोड़ों आन्दोलन में वह जेल चले गये। चौहान जी को जेल जाने के कारण 'हंस' के सम्पादन का दायित्व अमृतराय को लेना पड़ा।"27 चौहान जी को श्रीपतराय और समकालीन लेखकों ने पूरा सहयोग किया। चौहान जी कम्युनिष्ट थे। अतः 'हंस' पर कम्युनिष्ट विचारधारा का प्रभाव पड़ना स्वभाविक था। 'हंस' व्यवहारिक रूप से 'प्रगतिशील लेखक संघ' का मुख्य पत्र बन गया था। 'हंस' के माध्यम से शिवदान सिंह चौहान ने प्रगतिशील साहित्य का नेतृत्व भी किया।

"हिंदी में 'रिपोर्ताज' लिखने की परम्परा का प्रारंभ दिसंबर 1938 में हुआ। इस विधा के महत्त्व को समझकर उसके विकास का मार्ग प्रशस्त करने का श्रेय श्री शिवदान सिंह चौहान को ही है। 'हंस' पत्रिका के तत्कालीन संपादक के रूप में उन्होंने 'अपना देश' नामक स्थायी स्तंभ प्रारंभ किया जिसमें प्रतिमास एक 'रिपोर्ताज' प्रकाशित होता था। शिवदान सिंह चौहान द्वारा रचित 'रिपोर्ताज' 'मौत के खिलाफ ज़िन्दगी की लड़ाई' इस स्तंभ की पहली कड़ी के रूप में प्रकाशित हुआ।"28 इनके समय में 'हंस' में 'समाचार

और विचार' नाम से एक और स्तंभ निकलता था। इसमें प्रमुख सामाग्री 'रिपोर्ताज' की ही होती थी।

हंस और अमृतराय :

विलक्षण प्रतिभा के धनी रचनाकार अमृतराय व्यक्ति नहीं संस्था थे। प्रेमचंद की विराट प्रगतिशील परम्परा के सच्चे उत्तराधिकारी होने के साथ-साथ वे उसके संवाहक भी थे। साहित्य की दुनिया में अमृतराय एक ऐसे दिग्गज लेखक के रूप में विख्यात रहे हैं, जिनके व्यक्तित्व के न जाने कितने पक्ष हैं। उन पक्षों में से एक जो अत्यंत मजबूती से उभरा, संपादक का था। "1942 में शिवदान सिंह चौहान के जेल चले जाने के बाद, अमृतराय 'हंस' के संपादन का दायित्व संभाला। और इस दायित्व को 1952 तक बखूबी निभाया।"29

"जब अमृतराय ने 'हंस' निकालना शुरू किया, देश का स्वाधीनता संग्राम 'करो या मरो' के संकल्प के साथ निर्णायक मोड़ पर था और सन् 1943 में (1942 के अंत में ही) बंगाल में भीषण अकाल पड़ा, बुनियादी या रोजमर्रा की तमाम वस्तुओं की कमी होने लगी थी, लाखों आदमियों के मरने की खबरें आने लगीं। इस दिल दहला देने वाली विभीषिका के जानदार रिपोर्ताज रांगेय राघव ने लिखे, जिसे अमृतराय ने 'हंस' में छापा।"30 'हंस' में प्रकाशित रिपोर्ताज आगे चलकर 'तूफानों के बीच' शीर्षक से संगृहीत किए गए।

"अमृतराय जब 'हंस' के संपादक बने तो प्रकाशनार्थ प्राप्त सारी सामग्री लेकर बनारस से लखनऊ जाते थे और बारूदखाने में (कम्युनिस्ट पार्टी के दफ्तर में) रामविलास शर्मा और शिवदान सिंह चौहान के साथ बैठक करते थे। प्रकाशनार्थ प्राप्त सामग्री पर विचार-विमर्श के बाद सारी सामग्री स्वीकृत की जाती थी। यह बात खुद अमृतराय ने गिरिजा कुमार माथुर को बातचीत के दौरान बताई थी, पर उन्होंने यह भी बताया था कि संपादन-चयन का सारा काम मेरा ही होता था जिसकी एक और स्क्रीनिंग मुझ से अधिक वयस्क पार्टी के साथी किया करते थे, क्योंकि तब मैं बहुत छोटा था, केवल 21-22 साल का था।"31

अमृतराय ने अपनी बुद्धि विवेक से 'हंस' को उसी रीति-नीति से चलाना प्रारंभ किया और आगे चलाया भी, जिस नीति से प्रेमचंद जी ने चलाया था। अमृतराय ने 'हंस' के माध्यम से सारी क्रांतिकारी और प्रगतिशील चेतना को एक उग्र गति देने का काम किया, प्रगतिशील सोच और प्रगतिशील आंदोलन को एक नई दिशा देने का कार्य भी किया। इस समझदारी के बूते अमृतराय ने 'हंस' को व्यापक प्रगतिशील चेतना का मंच बनाया और एक नई सामाजिक प्रयोगधर्मी चेतना का मंच भी।

अमृतराय प्रगतिशीलता को व्यापक दृष्टि से देखने के हिमायती थे, इसलिए उन्होंने ज्यादा से ज्यादा लोगों को 'हंस' से जोड़ा और उनकी प्रतिभा, तड़प, बेचैनी और तिलमिलाहटों को समुचित अवसर प्रदान कर प्रमुखता से प्रकाशित किया।

अमृतराय ने 'हंस' में विश्व के अनेक लेखकों के सैद्धांतिक वैचारिक निबंधों को भी जगह दी। अनेक महत्वपूर्ण मार्क्सीय साहित्य मनीषियों के निबंधों का अमृतराय ने स्वयं अनुवाद किया और अनूदित निबंधों को 'हंस' के पाठकों के लिए सार्वजनिक किया। ये निबंध हैं- "'मार्क्सीय साहित्यालोचना क्या हैं?' (जॉन लुइस, 'हंस' जुलाई 1947), 'साहित्य की मार्क्सवादी व्याख्या' (एडवर्ड अपवर्ड, 'हंस' फरवरी-मार्च 1943), 'कला: समाजवाद और पूंजीवाद में' (एंथनी ब्लंट, 'हंस' फरवरी-मार्च 1943), 'अखबार, रेडियो और सामाजिक चेतना' (चार्ल्स मैज, 'हंस' फरवरी-मार्च 1943), 'नौजवानों से एक बातचीत' (मैक्सिम गोर्की, 'हंस' जनवरी-फरवरी 1947), 'लेखक और उसकी कला' (कोंस्तांतिन

फेदिन), 'साहित्य की पक्षधरता का प्रश्न' (जोजेफ फ्रीमैन, 'हंस' जून 1943), 'ऐंटन चेखव : एक संस्मरण' (मैक्सिम गोर्की, 'हंस' जून 1947)।"32

अमृतराय ने 'हंस' में प्रेमचंद साहित्य को लेकर कई बार लिखा, उनमें से तीनों निबंधों की चर्चा खूब होती रही हैं, ये हैं- "'प्रेमचंद और हमारा कथा साहित्य' ('हंस' अक्टूबर 1945), 'प्रगतिशीलों का अपना प्रेमचंद कब?' ('हंस' 1947) और 'प्रेमचंद विकास के चरण' (हंस नंबर 1947)।"33 अमृतराय ने 10 वर्षों तक 'हंस' के संपादन-कौशल से साबित किया कि एक संपादक चाहे तो साहित्य की भूमि को मिलन की भूमि बना सकता है।

अमृतराय के ही शब्दों में कहें तो- "शर्त बस एक ही है कि व्यक्ति अपनी वैचारिक संकीर्णता से थोड़ा उबर सके, सबको अपने ही मत की घुट्टी पिलाने की कोशिश न करें बल्कि यह मानकर चलें कि दूसरे भी उसी के समान ईमानदार हैं, उसी देश-काल में जीते हैं इसलिए कुछ अजब नहीं कि उनकी रचनाओं में भी, कुछ दूसरे रंग में, कुछ दूसरे स्वर में, वही देश-काल बोल रहा हो।"34

अमृतराय ने महान साहित्यकारों को भी 'हंस' में स्थान दिया। उन्होंने 'रोमा रोला' को याद किया ('हंस' नवंबर 1944), रवींद्रनाथ टैगोर को सराहा ('हंस' अगस्त 1945), भगवतशरण उपाध्याय पर ('हंस' सितम्बर 1945), किसानों और मजदूरों के जीवन पर ('हंस' 1946), भगवती चरण वर्मा-उपेन्द्रनाथ अश्क-रामवृक्ष बेनीपुरी पर समीक्षा ('हंस' 1947), यशपाल की सेक्स दृष्टि ('हंस' जनवरी 1951) इत्यादि।

अमृतराय सन् 1951 में 'हंस' को लेकर प्रयाग आ गये और वहीं बस गए। 'हंस' का प्रकाशन भी वहीं से शुरू हो गया लेकिन इलाहाबाद से शुरू होने के तकरीबन एक साल बाद ही 'हंस' की चाल रूक गयी, 'हंस' घाटे पे घाटा दे रहा था। अमृतराय दर्द भरे शब्दों में कहते हैं कि-"कुछ ऐसी मजबूरियां आई कि 1952 में उसे बंद करना पड़ा।"35 'हंस' का बंद हो जाना अमृतराय के मन को बहुत खलता रहा, उन्होंने सन् 1956 में 'अर्द्धवार्षिक साहित्य संकलन' के रूप में 'हंस' का एक अंक निकाला, पर वैसा सम्मान नहीं मिला जैसा 1952 तक 'हंस' को मिलता आया था।

अमृतराय की संपादन योग्यता पर कुमार वीरेन्द्र कहते हैं कि- "जो भी हो अमृतराय ने 'हंस' के दस वर्षों (1942-52) के संपादन काल में अपनी राजनीतिक प्रतिबद्धताओं के बावजूद उसकी अलग पहचान बनाये रखी, इससे किसी को इंकार न होना चाहिए और न ही यह स्वीकार करने में किसी को कोई कठिनाई होनी चाहिए कि अनेक प्रकार के दबाओं के बावजूद उन्होंने साहित्यिक मूल्यों को बनाये रखा। उनकी मूल्यगत प्रतिबद्धताओं के कारण 'हंस' कभी भी आर्थिक रूप से लाभदायी पत्रिका के रूप में स्थापित न हो सकी।"36

लेकिन जो नयी तब्दीलियाँ हो रही थीं। नया विकास हो रहा था। सामाजिक सन्दर्भों में जो परिवर्तन हो रहे थे। आज़ादी के बाद यथार्थ की जो विविध अवधारणाएँ उभर रही थीं, उस पर 'हंस' की निगाह थी और इसके माध्यम से अमृतराय ने सार्थक बहसें चलाईं। जिससे 'हंस' का महत्त्व उसकी गरिमा बढ़ती ही गई।

निष्कर्ष :

निष्कर्षत: प्रेमचन्द की पत्रकारिता से हम यह सीख ले सकते हैं कि रपट या टिप्पणी चाहे कलेवर में जितनी छोटी हो, उनकी संप्रेषणीयता इतनी बेधड़क व शक्तिशाली होनी चाहिए और वक्तव्य इतना स्पष्ट होना चाहिए कि कोई उसकी उपेक्षा नहीं कर सके। चाहकर भी कोई उसे नजरन्दाज करने की हिमाकत न कर सके।

प्रेमचंद की पत्रकारिता किसी भी दृष्टि से कम महत्वपूर्ण नहीं है। यदि उनके ऊपर उनका साहित्य हावी न होता तो वह एक सुविख्यात पत्रकार के रूप में भी युगों-युगों तक याद किए जाते। किंतु उनके दिल में भी किसान, मजदूर, दलित, सर्वहारा बसते थे जिसे वे अपने दिल से कभी निकल न सके। समाज और सामाजिक समस्याएं उनके साहित्य के केंद्र में रही। उसी की झलक 'हंस' में भी दिखाई देती है।

'हंस' पत्रिका का संपादन प्रेमचंद जी ने किया और प्रकाशन 1930 में काशी में हुआ। इस पत्रिका का स्वतंत्रतापूर्व पत्रिकाओं में विशेष महत्व रहा है। कुछ समय बाद इस पत्रिका के संपादन का भार राजेन्द्र यादव जी ने संभाला। निबंध, एकांकी, आलोचना, लघुकथा,

गीत, कविता आदि विधाओं का इसमें प्रकाशन होता रहा। हंस पत्रिका ने साहित्य की पुरानी परंपराओं को तोड़कर नई परंपराओं की स्थापना कर पत्रकारिता जगत में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। राजेंद्र यादव वामपंथी विचारधारा के साहित्यकार थे अतएव 'हंस' पर उनका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था किंतु प्रेमचंद भी दलितों, गरीबों, मजदूरों, सामाजिक विडम्बनाओं की हिमायत करते थे और राजेंद्र यादव भी उसी तरह के विचारों को लेकर चल रहे थे। या यूं कहें कि जिस मुद्दा, विचार को प्रेमचंद जी 'हंस' में उठाये उस मुद्दा, विचार को राजेन्द्र जी अंजाम तक पंहुचाएं।

पत्रकार प्रेमचन्द समाज-कश्ती के लिए मांझी का काम करते थे। यदि प्रेमचन्द विचारवान पत्रकार न होते तो उनकी कल्पनाएँ केवल मनोरंजन का मेला जुटाती, युग प्रवर्तक होने का श्रेय उन्हें न मिलता। प्रेमचन्द ने निर्जीव कागज के टुकड़ों में जान भर कर स्थायी, यथार्थ और दीर्घ कालीन प्रभाव छोड़ने वाली सामूहिक चित्तवृत्तियों को अंकित किया। प्रेमचंद समाज में नई चेतना जागृत कर रहे थे। हमारे समाज में कुछ गलत परंपराएं चल रही हैं उसे दूर करने का प्रयास साहित्य के माध्यम से कर रहे थे। जिससे स्वस्थ समाज की स्थापना हो सके। ईश्वरचंद विद्यासागर के विधवा विवाह को उन्होंने समर्थन किया। इस प्रकार प्रेमचंद ने सामाजिक कुरीतियों को साहित्य के आईने द्वारा समाज को दिखाने का प्रयास किया। प्रेमचंद के इस प्रयास में 'हंस' ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

साहित्यिक हिंदी पत्रकारिता का इतिहास न केवल समृद्ध है बल्कि समय के सापेक्ष उपजने वाले विमर्शों में यह अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। तकनीकी के अत्यधिक विकास और प्रयोग के बावजूद मुद्रित माध्यमों की महत्ता तनिक भी कम नहीं हुई है बल्कि यह मुद्रित होने के साथ-साथ इंटरनेट से जुड़े माध्यमों में प्रवेश कर चुकी है और साहित्यिक हिंदी पत्रकारिता को ग्लोबल प्रसिद्धि और प्रसार मिल रहा है। प्रत्येक सामाजिक विमर्श में साहित्यिक हिंदी पत्रिकाओं की भूमिका और महत्त्व सदैव रहेगी। इसने समय के साथ चलना सीख लिया है। आधुनिक तकनीकी को भी आत्मसात कर लिया है। समय के साथ-साथ यह अपने आप

में बदलाव ला रहा है। यही कारण है कि इसने साहित्य और समाज में अपनी जड़े जमा रखी हैं, अपने अस्तित्व को कायम रखा है।

*****

सन्दर्भ ग्रन्थ :

1. हिंदी पत्रकारिता : संवाद और विमर्श – कैलाश नाथ पाण्डेय, पृ.सं.- 63

2. वही... पृ.सं.- 64

3. हिंदी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ.सं.- 293

4. वही... पृ.सं.- 296

5. वही... पृ.सं.- 296

6. वही... पृ.सं.- 297

7. प्रेमचन्द : कहानीकार ही नहीं, पत्रकार भी – लाइव हिंदुस्तान डाट काम, 29 जुलाई 2009

8. हंस आत्मकथा अंक - प्रेमचन्द, पृ.सं.- भूमिका से

9. कलम का सिपाही – अमृतराय, पृ.सं.- 428

10. वही... पृ.सं.- 428

11. वही... पृ.सं.- 428

12. हिंदी पत्रकारिता: संवाद और विमर्श– कैलाश नाथ पाण्डेय, पृ.सं.- 185

13. कलम का सिपाही – अमृतराय, पृ.सं.- 428-429

14. पत्रकार प्रेमचन्द और हंस- डॉ. रत्नाकर पाण्डेय, पृ.सं. – 120

15. MAHI-08 हिंदी उपन्यास, I-प्रेमचन्द का विशेष अध्ययन, पृ.सं. – 34

16. हंस आत्मकथा अंक - प्रेमचन्द, पृ.सं.- 166

17. प्रेमचन्द : घर में – शिवरानी देवी, पृ.सं.-307

18. वही..... पृ.सं.-307

19. वही..... पृ.सं.-308

20. हंस, प्रेमचन्द-स्मृति-अंक, मई-1937, पृ.सं.-770

21. हंस पत्रिका- संपादिका शिवरानी देवी, जून 1937, सम्पादकीय से

22. हंस पत्रिका, प्रेमचन्द-स्मृति-अंक, मई-1937 सम्पादकीय से

23. वही..... पृ.सं.-769

24. हंस पत्रिका- संपादक जैनेन्द्र कुमार, जुलाई 1937, सम्पादकीय से

25. हंस पत्रिका- संपादक जैनेन्द्र कुमार, अगस्त 1937, सम्पादकीय से

26. लमही पत्रिका, अप्रैल-सितम्बर 2018, पृ.सं.-12

27. लमही पत्रिका, जुलाई-सितम्बर 2021, पृ.सं.-110

28. आलोचना पत्रिका, अक्टूबर-दिसम्बर 2000, पृ.सं.-7

29. लमही पत्रिका, जुलाई-सितम्बर 2021, पृ.सं.-110

30. वही..... पृ.सं.-110

31. वही..... पृ.सं.-111

32. वही..... पृ.सं.-115

33. वही..... पृ.सं.-115

34. वही..... पृ.सं.-117

35. वही..... पृ.सं.-6